हिंदी कथा आलोचना और देवीशंकर अवस्थी

डॉ एम अब्दुल रजाक

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

क्रिसतू जयंती महविद्यालय (स्वायत्त)

के। नारायणपुर कोतानूर पोस्ट

बंगलूरू, पिन – 560077

दूरभाषा-9493405942 , rajakji@gmail.com

सुनो! आज मैं तुम्हें वह सत्य बतलाता हूँ जिसके आगे हर सच्चाई छोटी है भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क रोटी है।- सुदामा पांडेय धूमिल

आधुनिकता मूल्य बोधक होती है। आधुनिकता के मूल्यों में विवेक (बुद्धि) एक है। 'विवेक और संवेदना' के योग का नाम ही आलोचना है। आलोचना का संबंध मूलत: विवेक से होता है। आलोचना में विवेक के आधार पर कृति का मूल्यांकन किया जाता है। आलोनचा के विवेक को अर्जित और विकसित करने वाले समर्थ आलोचकों में एक थे डॉ देवीशंकर अवस्थी। देवीशंकर अवस्थी के कथा आलोचना पर विचार करने से पहले कथा आलोचना की परंपरा बोध पर विचार करना जरूरी है। क्योंकि बगैर परंपरा बोध के मानने योग्य आलोचना नहीं बन सकती ; अगर कही बन भी जाए तो उसमें कही न कही गुणवत्ता की कमी दिखाई पड़ती है। इससे बचने के लिए परंपरा बोध का होना अनिवार्य है।

प्रेमचंद कथा साहित्य पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए अनुभूतियों की वास्तविकता, मनोभावों का चित्रण, सरल भाषा आदि पर बल देते हैं। आगे वे कहते हैं- "कथा साहित्य में भी विकास हुआ है और उसके विषय में चाहे उतना परिवर्तन न हुआ हो पर शैली तो बिलकुल ही बदल गई। अलिफलैला उस वक्त का आदर्श था, उसमें बहु रूपता थी; वैचित्र्य था, कुतूहल था रोमांस था; पर उसमें जीवन की समस्याएँ न थी, मनोविज्ञान के रहस्य न थे,अनुभूतियों की इतनी प्रचुरता न थी, जीवन अपने सत्य रूप में इतना स्पष्ट न था। उसका रूपांतर हुआ और उपन्यास का उदय हुआ, जो कथा और नाटक के बीच की वस्तु है। पुराने दृष्टांत भी रूपांतरित हो कर कहानी बन गए।"[i]

आज से दो हजार बरस पहले यूनान के विख्यात दार्शनिक अफलातूँ (प्लेटो) ने सही कहा था कि- ' हर एक काल्पनिक रचना में मौलिक सत्य मौजूद रहता है।' कथा साहित्य में कहानी एक मात्र ऐसी विधा है जो पाठकों में कम शब्दों में अधिक अनुभूति उत्पन्न करती है। इसलिए शायद नामवर सिंह कहानी के मनोरंजन तत्व को उसकी सफलता तो शिल्प को उसकी सार्थकता मानते हैं। वे कहते हैं कि -" छोटे मुँह बड़ी बात कहनेवाली कहानी के बारे में प्राय: बड़े मुँह छोटी बात कही जाती है। कहानी का दुर्भाग्य है कि वह मनोरंजन के रूप में पढ़ी जाती है। और शिल्प के रूप में आलोचित होती है मनोरंजन उसकी सफलता है तो शिल्प सार्थकता मानते है।"[ii]

इससे लगता है कि समाज ही साहित्य का मूल आधार है, साहित्य और समाज दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं; कभी समाज साहित्य से प्रभावित होता है तो साहित्य समाज से। साहित्य और समाज का संबंध ऐसा है कि उसे अविनाभावी संबंध कहते है अर्थात् जिसके बिना जिसकी सिद्धि न होय उसको अविनाभावी संबंध कहते हैं। इसलिए प्रेमचंद कहते है कि- "हम साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं मानते हैं, बल्कि दीपक मानते हैं, जिसका काम प्रकाश फैलाना है।"[iii] यहाँ प्रेमचंद यह कहना चाहते हैं कि हम चाय को जिस तरह छानते है उसी प्रकार लेखक समाज को छान कर कृति की सृजन करता है। निर्मल वर्मा ने सही कहा था कला नाटकीय होती है किंतु नाटक नहीं होती। निर्मल वर्मा लिखते है कि– "दरअसल कला की हर विधा अलग–अलग ढंग से नाटकीय होती है। क्योंकि वह अलग-अलग रूपों में अपने को दुनिया से जोड़ती है। नाटकीयता हर कला विधा में मौजूद रहती है, किंतु हर विधा नाटक नहीं होती।"[iv]

देवीशंकर अवस्थी उपन्यास के उद्भव के बारे में बात करते हुए कहते हैं कि सामाजिक यथार्थ एंव वैयक्तिक बोध के संयोग से उपन्यास का जन्म होता है। वे लिखते हैं –" कहना तो यों चाहिए कि जिस बिंदु पर वैयक्तिक राग बोध एंव सामाजिक इतिहास मिलता है ; वहीं से उपन्यास का जन्म होता है । बगैर सामाजिक सचाई की विराटता को अपनाए वह वैयक्तिक प्रतिक्रिया का आत्मपरक आख्यान रह जाता है बगैर निजी वैयक्तिक जीवन को वाणी दिये उसकी नियति सामाजिक इतिहास के दस्तावेज की हो जाती है। "[v]

प्रेमचंद यथार्थ एंव आदर्श को ही उपन्यास मानते हैं । वे कहते हैं, वही रचना उच्च कोटि की होती है जिस में समाज का हू-ब-हू चित्रण हो । प्रेमचंद लिखते हैं -" मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। "[vi] सामाजिक यथार्थ की बात करते हुए मुझे कार्ल मार्क्स की एक बात याद आती है – "पूँजी सिर से पैर तक के एक-एक बूँद मिट्टी को चूसकर एकत्रित होती है और मजदूर जितनी ही अधिक संपत्ति की रचना करता है ,वह उतना ही अधिक मूल्य हीन बन जाता है ; और उसकी बनाई हुई चीज जितनी ही सुंदर होती है बनानेवाला उतना ही कुरूप बन जाता है।" यह वर्तमान के सामाजिक यथार्थ की सचाई है, समकालीन साहित्य संत्रास, कुंठा, विडंबना, अजनबी आदि से भरा है ये एक मिसाल हैं।

अवस्थी जी कथा आलोचना पर विचार करते हुए कहते हैं कि कहानी में नया चरित्र एकाएक नहीं आता है बल्कि उसके पीछे इतिहास होता है। अवस्थी जी चरित्र पर बल देते हैं। भाषा शिल्प को उतना महत्व नहीं देते हैं। उनका मानना है कि कहानी की भाषा में लय, बिंब, लाने की कोशिश करेंगे तो भाषा दुरूह हो जाएगी। जो कहानी की भाषा में ऐसा करते हैं, वे कृत्रिम भाषा लाने की कोशिश करते हैं। वास्तविकता से जी चुराते है । नामवर सिंह अवस्थी जी के विपरीत है; वे कहानी की भाषा पर जोर देते हैं। प्रेमचंद अनुभूतियों पर बल देते हैं। अवस्थी जी प्रेमचंद के साहित्यिक मूल्यों का समर्थन करते हैं।

अवस्थी जी कहानी की भाषा की तुलना में चरित्र को महत्व देते हैं। उनका मानना है कि अगर जीवन का वास्तविक चरित्र कहानी में होगा तो कहानी की भाषा खुद-ब-खुद उसके अनुरूप हो जाएगी। कहानिकारों को भाषा पर बल देने की जरूरत नहीं हैं अवस्थी जी कहते है कि कहानी के संबंध अनुभव से हैं। जीवन के वास्तविक अनुभव नहीं है तो कहानी की भाषा अच्छी नहीं होगी । प्रेमचंद श्रोताओं के अनुभव द्वारा कहानी के

प्रतिमान बनाते हैं। नामवर सिंह कहानी की अनुभूतियों के प्रामाणिकता पर बल देते हैं। सूरेंद्र चौधरी कहानी के पाठ पर बल देते है।

अवस्थी जी मानते हैं कि कहानी की गतिशीलता को जीवन की घटनाएँ प्रभावित नहीं करती बल्कि पात्र उसको प्रभावित करते हैं पात्र अगर गतिशील होगा तो कहानी भी खुद-ब-खुद गतिशील होगी ।वे कहानी की वास्तविकता की तलाश करते हुए उसके चरित्र को परखते हैं।

सन् 1957 में इलाहाबाद साहित्यकार सम्मेलन में यशपाल ने जब आलोचना की निस्सारता का प्रश्न उठाया था और धर्मवीर भारती ने उसे अपना समर्थन दिया, तब उन दिनों में अवस्थी जी आलोचना के क्षेत्र में अपने पूरे तेज के साथ आने की तैयारी कर रहे थे, उन्होंने आलोचना की निस्सारता की घोषणा पर तीखी प्रतिक्रिया करते हुए दृढ़ता पूर्वक कहा था- " समीक्षा की अनिवार्यता उपयोगिता पर मेरा विश्वास है।" अवस्थी जी ने यह वक्तव्य ऐसा ही नहीं दिया था; उन्होंने सोच समझकर कहा था इस का आधार वे विवेक को मानते हैं। उपर्युक्त स्रोत मुझे राजेंद्र कुमार (संपादित) की पुस्तक 'आलोचना का विवेक ' से मिला। देवीशंकर अवस्थी अपने समय के आलोचना विवेक को पूर्ववर्तियों से विलगाते हुए विश्लेषण प्रकिया के विस्तार को लक्षित कर रहे थे। अवस्थी जी लिखते हैं- " विश्लेषण सामाजिक पृष्ठभूमि से लेकर सृजन प्रकिया तक तथा कथ्य की विविध भाव भूमियों और संवेदनाओं से लेकर बिंब शक्ति की नाप तक फलता है। साथ ही यह भी कि पुराने समीक्षक जहाँ भाव-पक्ष तथा कला पक्ष के पुराने द्वंद्व से चिपटा रहता था, वही नया समीक्षक इस पचड़े से अलग रह कर रचना के विविध जटिल स्तरों का उदघाटन करता है।" यह स्रोत मुझे राजेंद्र कुमार की पुस्तक 'आलोचना का विवेक' से मिला।

अधिकांशत: यह देखा जाता है कि आलोचना में एक आलोचक दूसरे आलोचकों पर निरर्थक छीटाकशी करते हैं। इस प्रवृत्ति का विरोध करते हुए अवस्थी जी लिखते है कि–" समीक्षा या समीक्षकों को गाली देने के स्थान पर यह कहीं अच्छा होगा कि अच्छी समीक्षाओं की चर्चा हो, उन्हें दुबारा छापा जाए या कि संकलित रूप में प्रकाशित किया जाए।"[vii] कहने की जरूरत नहीं है कि देवीशंकर अवस्थी यह सलाह केवल दूसरों को देकर रह जानेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने पहले यह काम स्वयं करके दिखाया; अच्छी समीक्षाओं का एक महत्वपूर्ण संकलन प्रस्तुत किया। बड़े मन से उस संकलन का नाम रखा 'विवेक के रंग'। उपर्युक्त वक्तव्य कथा आलोचना में अवस्थी जी की मजबूत पकड़ को स्पष्ट करता हैं।

अवस्थी जी कहानी के तत्वों आदि की चर्चा करने से पहले उसकी तीन विशेषताओं को जान लेना आवश्यक समझते हैं। ये विशेषताएँ है कि-1.संक्षिप्ता 2.रोचकता 3.एक सूत्रता। अवस्थी जी कहानी के तत्वों के बारे में प्रकाश डालते हुए चार को तत्व मानते हैं, वे कहते हैं कि - "कहानी के तत्वों की चर्चा करते हुए बहुधा विद्वानों ने 1.कथानक 2. पात्र 3. वातावरण 4.संवाद 5. शैली 6.उद्देश्य, ये छ: तत्व गिनाएँ हैं। परंतु ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि वस्तुत: कहानी के मुख्य तत्व चार होते हैं कथानक, पात्र ,वातावरण और मूल भाव बिंदु। उद्देश्य इसी मूल भाव बिंदु के अंतर्गत आ जाता है। शैली कहानी का तत्व न होकर वह उपकरण है जिससे इन विविध तत्वों को एक सूत्र में पिरोकर लेखक कहानी के कला रूप को सामने लाता है। शैली में जिन कौशलों का उपयोग किया जाता है उन्हीं में से एक संवाद भी है ।"[viii] देवीशंकर अवस्थी कहानी के तत्वों में पात्र एंव शैली को ज्यादा महत्व देते हैं। अवस्थी जी कहते हैं कि पात्र कहानी की आत्मा है तो शैली कहानी का शरीर है ।

कथा आलोचना के प्रतिमान जीवन मूल्यों के आधार पर उत्पन्न होते हैं उन्हीं जीवन मूल्यों के आधार पर कथा आलोचना का मूल्यांकन भी किया जाता है। जिन मूल्यों के द्वारा कथा की आलचना की जाती है वह सही है या नहीं इसकी जाँच एवं पड़ताल करने के लिए एक दृष्टि की आवश्यकता होती है। जीवन मूल्यों से युक्त दृष्टि को सामने लेकर आने वाले आलोचक देवीशंकर अवस्थी है। इस बात को कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि देवीशंकर अवस्थी की कथा आलोचना के मानदंडों को देखते हुए उनमें मानवीय मूल्यों और प्रगतिशील दृष्टि नजर आती है।

अंततः सन् 1960 के दशक में ही हिंदी कथा आलोचना को उन्होंने एक दिशा दी थी। अवस्थी जी की कथा आलोचना पर प्रकाश डाला जाए तो लगता है कि उनमें मार्क्सवादी विचार धारा दिखाई पड़ती हैं। हिंदी कथा आलोचना को विकसित करने में दवीशंकर अवस्थी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं।

संदर्भ सूची:

1. प्रेमचंद- प्रेमचंदः कुछ विचार। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2001, पृ -35
2. संपादक देवीशंकर अवस्थी- नई कहानी संर्भद और प्रकृति, लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली-2000, पृ 62
3. प्रेमचंद- प्रेमचंदः कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2001,पृ-30
4. निर्मल वर्मा- तीन एकांत, लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली-1998, पृ-7
5. देवीशंकर अवस्थी–आलोचना का द्वंद्व, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ल-2000, पृ-48
6. प्रेमचंद- प्रेमचंदः कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2001, पृ-47
7. देवीशंकर अवस्थी- विवेक के रंग की भूमिका से, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2005, पृ-47
8. संपादक देवीशंकर अवस्थी- कहानी विविधा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2001, पृ-16